fo'kn

Jh èkeZukFk foèkku

रचयिता

प. पू. आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज

Ñfr % **fo'kn Jh èkeZukFk foèkku**
Ñfrdkj % i- iw- lkfgR; jRukdj] {kekewfrZ
vkpk;Z Jh 108 fo'knlkxjth egkjkt
laLdj.k % izFke&2012 * izfr;k¡ % 1000
ladyu % eqfu Jh 108 fo'kkylkxjth egkjkt
lg;ksxh % {kqYyd Jh 105 fon'kZlkxjth egkjkt
cz- lq[kuUnuth HkS;k
laiknu % cz- T;ksfr nhnh ¼9829076085½ vkLFkk nhnh] liuk nhnh
la;kstu % lksuw] vkjrh nhnh
lEidZ lw=k%
izkfIr LFky% 1- tSu ljksoj lfefr] fueZydqekj xksèkk] 2142] fueZy fudqat] jsfM;ks ekdsZV efugkjksa dk jkLrk] t;iqj
Qksu % 0141&2319907 ¼?kj½ eks- % 9414812008
2- Jh jkts'kdqekj tSu Bsdsnkj
,&107] cqèk fogkj] vyoj] eks- % 9414016566
3- fo'kn lkfgR; dsUnz
C/o Jh fnxEcj tSu eafnj dqvk¡ okyk tSuiqjh
jsokM+h ¼gfj;k.kk½ eks- % 9812502062
ewY; % 25@& #- ek=k

µ % vFkZ lkStU; %µ
Jh iou dqekj tSu dh iq.; Le`fr esa
iq.; frfFk 19 uoEcj
Jherh lquhrk tSu
W/o Jh eqds'k dqekj tSu
13/34, Ist Floor, 'kfDr uxj] fnYyh&110007
eksck- % 9312223735

eqnzd % ikjl izdk'ku ¼'kkgnjk fnYyh½ Qksu ua- % 9811374961

rhFk±dj èkeZukFk dh tUeHkwfe jruiqjh rhFkZ ls tqM+h ,d lR; ?kVuk

तीर्थंकर भगवान के जन्म के समय पन्द्रह माह तक रत्नवृष्टि होने से उसका ''रत्नपुरी'' नाम तो सार्थक हुआ ही, एक कन्या मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा के कारण उस तीर्थ ने अपने नाम की प्रसिद्धि और भी फैला दी।

हस्तिनापुर के सेठ महारथ की पुत्री मनोवती ने एक बार दिगम्बर मुनि से नियम लिया था कि ''जब मैं मंदिर में भगवान के समक्ष गजमोती चढ़ाकर दर्शन करूँगी तब भोजन करूँगी। पीहर में तो उसका नियम अच्छी तरह पल गया किन्तु बल्लभपुर के सेठ हेमदत्त के पुत्र बुद्धिसेन से जब उसका विवाह हो गया तब उसके नियम के पालने से समस्या उत्पन्न हो गई। एक बार पीहर गई हुई थी कि इधर ससुराल वालों ने उसके पति को घर से निकाल दिया पुन: बुद्धिसेन ने हस्तिनापुर आकर अपनी पत्नी मनोवती को एकान्त में सारा हाल बताया और दोनों अपने भाग्य की परीक्षा करने हेतु वन की ओर चल पड़ते हैं। चलते-चलते चार दिन बाद ये लोग श्री धर्मनाथ तीर्थंकर की जन्मभूमि 'रतनपुरी' में आ गये। मनोवती बराबर उपवास करती रही और पति को कुछ भी ज्ञात न हुआ। इसी प्रकार से उसके 7 दिन उपवास में निकल गये तब एक दिन वह प्रभु का ध्यान लगाकर प्रार्थना करने लगी-''प्रभो! जब आपकी भक्ति से सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं, तब क्या मेरी छोटी-सी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं होगी? कुछ देर बाद उसका पैर नीचे को धंसा और उसने शिला उठाई तो सीढ़ियों से नीचे उतरने पर उसे विशाल जिनमंदिर दिखाई दिया, वहीं पर गजमोती के पुंज देखकर मनोवती बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी प्रतिज्ञापूर्ण कर आठवें दिन अन्नजल ग्रहण किया।

-मुनि विशाल सागर

vUrlpsruk

आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार ग्रन्थ में श्रावक के कर्त्तव्यों का कथन करते हुए कहा है–

दाणं पूया मुक्खं, सावय धम्मेण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जदि धम्मे तं विणा तहा सोवि॥

अर्थात्–श्रावक धर्म में दान और पूजा मुख्य कर्त्तव्य कहे हैं। इनके बिना गृहस्थ श्रावक नहीं कहलाता, इसी प्रकार मुनि धर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य हैं। इनके बिना मुनि की प्रतिष्ठा नहीं। जिनभक्ति के अभाव में मुक्ति मंदिर का द्वार नहीं खुलता–**''बोधि समाधि निदानं बोधतिः बोधः, समीचीन''** रविषेण आचार्य ने कहा है कि महापुरुषों का चरित्र बोधि व समाधि की खान है। अतः महापुरुषों के गुणों में अनुरक्त रहते हुए अपनी बुद्धि व यश को निर्मल बनाना चाहिए। उनके गुणों का निरन्तर चिन्तन करने से चरित्र में निर्मलता प्राप्त होती है व यश की वृद्धि होती है। श्रावक को कभी किसी प्रकार की स्थिति एवं परिस्थिति हो, लेकिन अपने कर्त्तव्यों से विमुख नहीं होना चाहिए। परम पूज्य अपरिमित प्रज्ञा के **धनी आचार्य 108 विशदसागरजी महाराज** ने एक-एक बूंद को इकट्ठा कर ''गागर में सागर'' भर दिया। उन शब्दों को विराट रूप देकर कई विधानों का निर्माण किया। जिसमें से तीर्थंकर धर्मनाथ विधान की रचना रची। ऐसे गुरुदेव के श्री चरणों का वर्णन करना बड़ा दुर्लभ है–

भक्ति ने भावों से मिलकर आज चहकना चाहा है,
शब्दों ने भावों से मिलकर आज महकना चाहा है,
स्वर्णिम जयंती है खुशियाँ छाईं अपार हैं,
गुरु गुणगान असम्भव है, पर हमने करना चाहा है॥

प. पू. गुरुदेव के चरणों में अत्यंत भक्ति भाव के साथ नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

–ब्र. सपना दीदी
संघस्थ आ. विशदसागरजी

मूलनायक सहित समुच्चय पूजन

(स्थापना)

तीर्थंकर कल्याणक धारी, तथा देव नव कहे महान्।
देव-शास्त्र--गुरु हैं उपकारी, करने वाले जग कल्याण॥
मुक्ती पाए जहाँ जिनेश्वर, पावन तीर्थ क्षेत्र निर्वाण।
विद्यमान तीर्थंकर आदि, पूज्य हुए जो जगत प्रधान॥
मोक्ष मार्ग दिखलाने वाला, पावन वीतराग विज्ञान।
विशद हृदय के सिंहासन पर, करते भाव सहित आह्वान॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक ... सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञान! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(शम्भू छन्द)

जल पिया अनादी से हमने, पर प्यास बुझा न पाए हैं।
हे नाथ! आपके चरण शरण, अब नीर चढ़ाने लाए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥1॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल रही कषायों की अग्नि, हम उससे सतत सताए हैं।
अब नील गिरि का चंदन ले, संताप नशाने आए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥2॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण शाश्वत मम अक्षय अखण्ड, वह गुण प्रगटाने आए हैं।
निज शक्ति प्रकट करने अक्षत, यह आज चढ़ाने लाए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥3॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों से सुरभी पाने का, असफल प्रयास करते आए।
अब निज अनुभूति हेतु प्रभु, यह सुरभित पुष्प यहाँ लाए॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥4॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज गुण हैं व्यंजन सरस श्रेष्ठ, उनकी हम सुधि बिसराए हैं।
अब क्षुधा रोग हो शांत विशद, नैवेद्य चढ़ाने लाए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥5॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञाता दृष्टा स्वभाव मेरा, हम भूल उसे पछताए हैं।
पर्याय दृष्टि में अटक रहे, न निज स्वरूप प्रगटाए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥6॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो गुण सिद्धों ने पाए हैं, उनकी शक्ती हम पाए हैं।
अभिव्यक्त नहीं कर पाए अतः, भवसागर में भटकाए हैं॥

जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥7॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल उत्तम से भी उत्तम शुभ, शिवफल हे नाथ ना पाए हैं।
कर्मोंकृत फल शुभ अशुभ मिला, भव सिन्धु में गोते खाए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥8॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पद है अनर्घ मेरा अनुपम, अब तक यह जान न पाए हैं।
भटकाते भाव विभाव जहाँ, वह भाव बनाते आए हैं॥
जिन तीर्थंकर नवदेव तथा, जिन देव शास्त्र गुरु उपकारी।
शिव सौख्य प्रदायक हैं जग में, हम पूज रहे मंगलकारी॥9॥

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा–**प्रासुक करके नीर यह, देने जल की धार।**
लाए हैं हम भाव से, मिटे भ्रमण संसार॥ शान्तये शांतिधारा...

दोहा–**पुष्पों से पुष्पाञ्जली, करते हैं हम आज।**
सुख-शांति सौभाग्यमय, होवे सकल समाज॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्...

पंच कल्याणक के अर्घ्य

तीर्थंकर पद के धनी, पाएँ गर्भ कल्याण।
अर्चा करें जो भाव से, पावे निज स्थान॥1॥

ॐ ह्रीं गर्भकल्याणकप्राप्त मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वा.।

महिमा जन्म कल्याण की, होती अपरम्पार।
पूजा कर सुर नर मुनी, करें आत्म उद्धार।।2।।

ॐ ह्रीं जन्मकल्याणकप्राप्त मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वा.।

तप कल्याणक प्राप्त कर, करें साधना घोर।
कर्म काठ को नाशकर, बढ़ें मुक्ति की ओर।।3।।

ॐ ह्रीं तपकल्याणकप्राप्त मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वा.।

प्रगटाते निज ध्यान कर, जिनवर केवलज्ञान।
स्व-पर उपकारी बनें, तीर्थंकर भगवान।।4।।

ॐ ह्रीं ज्ञानकल्याणकप्राप्त मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वा.।

आठों कर्म विनाश कर, पाते पद निर्वाण।
भव्य जीव इस लोक में, करें विशद गुणगान।।5।।

ॐ ह्रीं मोक्षकल्याणकप्राप्त मूलनायक...सहित सर्व जिनेश्वरेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वा.।

जयमाला

दोहा- **तीर्थंकर नव देवता, तीर्थ क्षेत्र निर्वाण।**
देव शास्त्र गुरुदेव का, करते हम गुणगान।।

(शम्भू छन्द)

गुण अनन्त हैं तीर्थंकर के, महिमा का कोई पार नहीं।
तीन लोकवर्ति जीवों में, ओर ना मिलते अन्य कहीं।।
विंशति कोड़ा-कोड़ी सागर, कल्प काल का समय कहा।
उत्सर्पण अरु अवसर्पिण यह, कल्पकाल दो रूप रहा।।1।।
रहे विभाजित छह भेदों में, यहाँ कहे जो दोनों काल।
भरतैरावत द्वय क्षेत्रों में, कालचक्र यह चले त्रिकाल।।
चौथे काल में तीर्थंकर जिन, पाते है पाँचों कल्याण।
चौबिस तीर्थंकर होते हैं, जो पाते हैं पद निर्वाण।।2।।
वृषभनाथ से महावीर तक, वर्तमान के जिन चौबीस।
जिनकी गुण महिमा जग गाए, हम भी चरण झुकाते शीश।।
अन्य क्षेत्र सब रहे अवस्थित, हों विदेह में बीस जिनेश।
एक सौ साठ भी हो सकते हैं, चतुर्थकाल यहाँ होय विशेष।।3।।

अर्हन्तों के यश का गौरव, सारा जग यह गाता है।
सिद्ध शिला पर सिद्ध प्रभु को, अपने उर से ध्याता है।।
आचार्योपाध्याय सर्व साधु हैं, शुभ रत्नत्रय के धारी।
जैनधर्म जिन चैत्य जिनालय, जिनवाणी जग उपकारी।।4।।
प्रभु जहाँ कल्याणक पाते, वह भूमि होती पावन।
वस्तु स्वभाव धर्म रत्नत्रय, कहा लोक में मनभावन।।
गुणवानों के गुण चिंतन से, गुण का होता शीघ्र विकाश।
तीन लोक में पुण्य पताका, यश का होता शीघ्र प्रकाश।।5।।
वस्तु तत्त्व जानने वाला, भेद ज्ञान प्रगटाता है।
द्वादश अनुप्रेक्षा का चिन्तन, शुभ वैराग्य जगाता है।।
यह संसार असार बताया, इसमें कुछ भी नित्य नहीं।
शाश्वत सुख को जग में खोजा, किन्तु पाया नहीं कहीं।।6।।
पुण्य पाप का खेल निराला, जो सुख-दुःख का दाता है।
और किसी की बात कहें क्या, तन न साथ निभाता है।।
गुप्ति समिति धर्मादि का, पाना अतिशय कठिन रहा।
संवर और निर्जरा करना, जग में दुर्लभ काम कहा।।7।।
सम्यक् श्रद्धा पाना दुर्लभ, दुर्लभ होता सम्यक् ज्ञान।
संयम धारण करना दुर्लभ, दुर्लभ होता करना ध्यान।।
तीर्थंकर पद पाना दुर्लभ, तीन लोक में रहा महान्।
विशद भाव से नाम आपका, करते हैं हम नित गुणगान।।8।।
शरणागत के सखा आप हो, हरने वाले उनके पाप।
जो भी ध्याये भक्ति भाव से, मिट जाए भव का संताप।।
इस जग के दुःख हरने वाले, भक्तों के तुम हो भगवान।
जब तक जीवन रहे हमारा, करते रहें आपका ध्यान।।9।।

दोहा- **नेता मुक्ती मार्ग के, तीन लोक के नाथ।**
शिवपद पाने आये हम, चरण झुकाते माथ।।

ॐ ह्रीं अर्हं मूलनायक.....सहित सर्व जिनेश्वर, नवदेवता, देव-शास्त्र-गुरु, सिद्धक्षेत्र, विद्यमान विंशति जिन, वीतराग विज्ञानेभ्यो अनर्घपदप्राप्त्ये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- **हृदय विराजो आन के, मूलनायक भगवान।**
मुक्ति पाने के लिए, करते हम गुणगान।।

।। इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

तीर्थंकर स्तवन

दोहा– **धर्मनाथ भगवान का, करते हम गुणगान।**
विशद ज्ञान को प्राप्त कर, मिले शीघ्र निर्वाण।।

(शम्भू छन्द)

परम पवित्र श्रेष्ठ शोभामय, भवि जीवों को मंगल रूप।
नित्य निरन्तर उत्सव संयुत, परम अद्वितीय तीर्थ स्वरूप।।
अनुपम तीन लोक के भूषण धर्मनाथ की शरण मिले।
चरण कमल में श्री जिनेन्द्र के, वन्दन कर मम हृदय खिले।।1।।

मात सुव्रता भानुराय गृह, जन्मे धर्म नाथ भगवान।
रत्नपुरी को धन्य किए प्रभु, गिरि सम्मेदशिखर निर्वाण।।
तीर्थंकर पद पाने वाले, जगत विभु कहलाए नाथ।
पद पंकज में 'विशद' भाव से, झुका रहे हम अपना माथ।।2।।

पंच योजन का समवशरण है, धर्मनाथ का अतिशयकार।
तप्त स्वर्ण सम आभा तन की, वज्रदण्ड लक्षण मनहार।।
दिव्य कमल शोभा पाता है, गंध कुटी पर श्रेष्ठ महान।
अधर विराजे सिंहासन पर, दर्शन दें चउ दिश भगवान।।3।।

आयु है दश लाख वर्ष की, छियालिस मूलगुणों के नाथ।
एक सौ अस्सी हाथ प्रभु का, अवगाहन भी जानो साथ।।
ॐकार मय दिव्य ध्वनि है, प्रभु की जग में मंगलकार।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ा हम, वन्दन करते बारम्बार।।4।।

'अरिष्ट सेनादी' तैतालिस, धर्मनाथ के कहे गणेश।
अन्य मुनीश्वर ऋद्धिधारी, धारे स्वयं दिगम्बर भेष।।
दुखहर्त्ता सुखकर्त्ता ऋषिवर, हुए जहाँ में करुणाकार।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, वन्दन करते हम शत् बार।।5।।

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

श्री धर्मनाथजिन पूजन

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ।।
तुमने मुक्ती पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्।।
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(सखी छन्द)

हम निर्मल जल भर लाएँ, चरणों में धार कराएँ।
जन्मादिक रोग नशाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन यह श्रेष्ठ घिसाए, पद में अर्चन को लाए।
संसार ताप विनशाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हम अक्षय अक्षत लाए, अक्षय पद पाने आए।
प्रभु अक्षय पदवी पाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

उपवन के पुष्प मँगाए, प्रभु यहाँ चढ़ाने लाए।
प्रभु काम बाण नश जाए, भव से मुक्ती मिल जाए।।

जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ताजे नैवेद्य बनाए, हम क्षुधा नशाने आये।
प्रभु क्षुधा रोग नश जाए, भव से मुक्ति मिल जाए।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हम मोह नशाने आए, अनुपम यह दीप जलाए।
प्रभु मोह नाश हो जाए, भव से मुक्ति मिल जाये।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ताजी यह धूप बनाए, अग्नी से धूम उड़ाएँ।
प्रभु कर्म नाश हो जाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु विविध सरस फल लाए, ताजे हमने मँगवाए।
हम मोक्ष महाफल पाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु आठों द्रव्य मिलाए, यह पावन अर्घ्य बनाए।
हम पद अनर्घ पा जाएँ, भव सागर से तिर जाएँ।।
जय धर्मनाथ जिन स्वामी, तुम हो प्रभु अन्तर्यामी।
तव चरण शरण को पाते, प्रभु चरणों शीश झुकाते।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा– **धर्मनाथ जिन के चरण, देते शांति धार।**
अष्टकर्म का नाश कर, होवे भवदधि पार।।

(शान्तये शांतिधारा)

नाथ आप जग में रहे, सुख शांति दातार।
अतः आपके पद युगल, वंदन बारम्बार।।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

पंच कल्याणक के अर्घ्य

(दोहा)

तेरस शुक्ल वैशाख की, मात सुव्रता जान।
जिनके उर में अवतरे, धर्मनाथ भगवान।।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य यह, चढ़ा रहे हम नाथ।
भक्ति का फल प्राप्त हो, चरण झुकाते माथ।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्ला त्रयोदश्यां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ सुदी तेरस तिथि, जन्मे धर्म जिनेन्द्र।
करते हैं अभिषेक सब, सुर-नर-इन्द्र महेन्द्र।।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य यह, चढ़ा रहे हम नाथ।
भक्ति का फल प्राप्त हो, चरण झुकाते माथ।।

ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रोला छंद)

तेरस सुदि माघ महान्, प्रभो दीक्षा धारे।
श्री धर्मनाथ भगवान, बने मुनिवर प्यारे।।
हम चरणों आए नाथ, अर्घ्य चढ़ाते हैं।
महिमा तव अपरम्पार, फिर भी गाते हैं।।

ॐ ह्रीं माघशुक्ला त्रयोदश्यां दीक्षाकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(हरिगीता छन्द)

पौष शुक्ला पूर्णिमा को, हुए मंगलकार हैं।
धर्म जिन तीर्थेश ज्ञानी, कर्म घाते चार हैं।
जिन प्रभु की वंदना को, हम शरण में आए हैं।
अर्घ्य यह प्रासुक बनाकर, हम चढ़ाने लाए हैं॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्ला पूर्णिमायां केवलज्ञानकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(शम्भू छन्द)

ज्येष्ठ चतुर्थी शुक्ल पक्ष की, धर्मनाथ जिनवर स्वामी।
गिरि सम्मेद शिखर से जिनवर, बने मोक्ष के अनुगामी॥
अष्ट गुणों की सिद्धी पाकर, बने प्रभु अंतर्यामी।
हमको मुक्तिपथ दर्शाओ, बनो प्रभु मम् पथगामी॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्ला चतुर्थ्यां मोक्षकल्याणक प्राप्ताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- पूजा कर जिनराज की, जीवन हुआ निहाल।
धर्मनाथ भगवान की, गातें अब जयमाल॥

(तर्ज–भक्ति बेकरार है)

धर्मनाथ भगवान हैं, गुण अनन्त की खान हैं।
दिव्य देशना देकर प्रभु जी, करते जग कल्याण हैं।
सर्वार्थ-सिद्धि से चय करके, रत्नपुरी में आये जी।
मात सुव्रता भानु नृप के, गृह में मंगल छाये जी॥
धर्मनाथ भगवान...
रत्नपुरी में देवों ने कई, रत्न श्रेष्ठ वर्षाए जी।
दिव्य सर्व सामग्री लाकर, नगरी खूब सजाए जी॥
धर्मनाथ भगवान...
चौथ शुक्ल की ज्येष्ठ माह में, सारे कर्म नशाए जी।
यह संसार असार छोड़कर, शिवपुर पदवी पाए जी॥
धर्मनाथ भगवान...

हम भी शिव पद पाने की शुभ, विशद भावना भाते जी।
तीन योग से प्रभु चरणों में, सादर शीश झुकाते जी॥
धर्मनाथ भगवान...
त्रयोदशी शुभ माघ शुक्ल की, जन्मोत्सव प्रभु पायाजी।
पाण्डुक वन में इन्द्रों द्वारा, शुभ अभिषेक कराया जी॥
धर्मनाथ भगवान...
वज्र दण्ड लख दांये पग में, नामकरण शुभ इन्द्र किया।
धर्म ध्वजा के धारी अनुपम, धर्मनाथ शुभ नाम दिया॥
धर्मनाथ भगवान...
अष्ट वर्ष की उम्र प्राप्त कर, देशव्रतों को धारा जी।
युवा अवस्था में राजा पद, प्रभु ने श्रेष्ठ सम्हारा जी॥
धर्मनाथ भगवान...
त्रयोदशी को माघ शुक्ल की, संयम पथ अपनाया जी।
पंच मुष्ठि से केश लुंचकर, रत्नत्रय शुभ पाया जी॥
धर्मनाथ भगवान...
उभय परिग्रह त्याग प्रभु ने, आतम ध्यान लगाया जी।
धर्म ध्यान कर शुक्ल ध्यान का, अनुपम शुभ फल पाया जी॥
धर्मनाथ भगवान...
चार घातिया कर्मनाश कर, केवल ज्ञान जगाया जी।
रत्नमयी शुभ समवशरण तब, इन्द्रों ने बनवाया जी॥
धर्मनाथ भगवान...
गंध कुटी में कमलासन पर, प्रभु ने आसन पाया जी।
दिव्य देशना देकर प्रभु ने, सब का मन हर्षाया जी॥
धर्मनाथ भगवान...

दोहा– धर्मनाथ जी धर्म का, हमें दिखाओ पंथ।
रत्नत्रय को प्राप्त कर, होय कर्म का अंत॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा– रत्नत्रय की नाव से, पार करें संसार।
विशद भावना बस यही, पावें भव से पार॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

प्रथम वलय

दोहा– पर्याप्ति के भेद छह, पाकर के भगवान।
संयम का पालन करें, पावें पद निर्वाण।

(मण्डलस्योपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ॥
तुमने मुक्ति पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्॥
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

पर्याप्ति धारक जिन के अर्घ्य

(चौबोला छन्द)

पर्याप्ती 'आहार' योग्य शुभ, हो शक्ति का पूर्ण विकास।
ग्रहण वर्गणाए करता है, जीव स्वयं ही करे प्रयास॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥1॥

ॐ ह्रीं आहार पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो 'शरीर' के योग्य शक्ति की, करें पूर्णता जीव प्रधान।
वे शरीर पर्याप्तीधारी, तन की रचना करें महान॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥2॥

ॐ ह्रीं शरीर पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो 'इन्द्रिय' पर्याप्ति हेतु शुभ, शक्ति पूर्णता करें विशेष।
वे इन्द्रिय पर्याप्ती पाकर, इन्द्रिय सुख पावें अवशेष॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥3॥

ॐ ह्रीं इन्द्रिय पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'श्वासोच्छवास' पर्याप्ती की जो, करें पूर्णता जीव महान।
वह पर्याप्त जीव होकर के, जीवन में करते कल्याण॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥4॥

ॐ ह्रीं श्वासोच्छवास पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो 'भाषा' के योग्य शक्ति की, करें पूर्णता जीव सदैव।
वह भाषा पर्याप्ती पाकर, वचन बोलते प्राणी एव॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥5॥

ॐ ह्रीं भाषा पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'मन' पर्याप्ति योग्य शक्ति की, करें पूर्णता जीव प्रधान।
पञ्चेन्द्रिय संज्ञी प्राणी हो, करते हैं निज का कल्याण॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥6॥

ॐ ह्रीं मन पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

आहारादि छह पर्याप्ति के, योग्य पूर्णता करें महान।
उत्तम संयम पालन करके, उन जीवों का हो कल्याण॥
छह पर्याप्ती पाकर जिनवर, करते हैं नित आतम ध्यान।
आत्म साधना करने वाले, पा जाते हैं पद निर्वाण॥7॥

ॐ ह्रीं छह पर्याप्ति धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

द्वितीय वलयः

दोहा– द्वादश अविरति त्याग कर, हो जाएँ व्रतवान।
संयम के धारी कहे, इस जग में गुणवान॥

(द्वितीय वलयोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ॥
तुमने मुक्ति पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्॥
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

बारह अविरति रहित जिन

(शम्भू छन्द)

है शरीर 'पृथ्वी' जिनका, वह पृथ्वी जीव कहाते हैं।
होके विकल रहें एकेन्द्रिय, जीवन भर दुख पाते हैं॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥1॥

ॐ ह्रीं पृथ्वीकायिक अविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'जल' ही है शरीर जिनका वह, जल कायिक कहलाते जीव।
मारण तापन छेदन भेदन, आदी के दुख सहें अतीव॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥2॥

ॐ ह्रीं जलकायिक अविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'अग्नि' में रहने वाले सब, जीव उष्णता जो पाते।
जलकर स्वयं जलाने वाले, कष्ट स्वयं सहते जाते॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥3॥

ॐ ह्रीं अग्निकायिक अविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'वायु' जिनका है शरीर वह, वायु कायिक जीव कहे।
गर्जन तर्जन आदि के दुख, से व्याकुल वह नित्य रहे॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥4॥

ॐ ह्रीं वायुकायिक अविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'वनस्पति' में रहने वाले, एकेन्द्रिय हैं जीव अपार।
वनस्पति कायिक कहलाते, जिनके दुख का नहीं है पार॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥5॥

ॐ ह्रीं वनस्पति कायिकअविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'दो इन्द्रिय' से पंचेन्द्रिय तक, जंगम होते हैं त्रस जीव।
कर्मोदय से छेदन भेदन, के दुख पाते स्वयं अतीव॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते जिन, हिंसा तज मंगलकारी॥6॥

ॐ ह्रीं त्रस जीवाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'स्पर्शन इन्द्रिय' के भाई, आठ भेद बतलाए हैं।
जिसकी आशक्ती के कारण, जीव जगत भटकाए हैं॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं, अविरत तज मंगलकारी॥7॥

ॐ ह्रीं स्पर्शन इन्द्रियाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पाँच भेद 'रसना इन्द्रिय' के, जीव रहें उसमें आसक्त।
लीन रहें खाने पीने में, रात होय या दिन हर वक्त॥
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं अविरत तज मंगलकारी॥8॥

ॐ ह्रीं रसना इन्द्रियाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'घ्राणेन्द्रिय' के विषय कहे दो, एक सुगन्ध और दुर्गन्ध।
मधुकर सम आसक्त हुए नर, विषयों में होकर के अंध॥

जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं अविरत तज मंगलकारी।।9।।

ॐ ह्रीं घ्राणेन्द्रिय अविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'चक्षु इन्द्रिय' की आशक्ती रखते हैं जो जग के जीव।
मोहित हो इन्द्रिय विषयों में कर्मबन्ध जो करें अतीव।।
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं अविरत तज मंगलकारी।।10।।

ॐ ह्रीं चक्षु इन्द्रिय कायिकाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'कर्णेन्द्रिय' के भेद सात हैं, उनमें आशक्ती को धार।
दु:ख उठाते हैं भव-भव में, प्राणी जग के बारम्बार।।
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं, अविरत तज मंगलकारी।।11।।

ॐ ह्रीं कर्णेन्द्रियाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कभी हिताहित का विवेक जो, जाग्रत न कर पाते हैं।
इन्द्रिय 'मन' की आशक्ती से, दु:ख अनेक उठाते हैं।।
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं, अविरत तज मंगलकारी।।12।।

ॐ ह्रीं अनिन्द्रयाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

इन्द्रिय प्राणी संयम पाकर, उत्तम व्रत जो धार रहे।
रत्नत्रय की निधि के स्वामी, शिव के राही जीव कहे।।
जीवों पर करुणा ना करते, होते अव्रत के धारी।
शिवपुर के राही बनते हैं, अविरत तज मंगलकारी।।13।।

ॐ ह्रीं इन्द्रिय संयमाविरति विनाशक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तृतीय वलय:

सोरठा– भेद कहे चौबीस, परिग्रह के दुखकारये।
चरण झुकाते शीश, धर्मनाथ जिन के चरण।

(तृतीय वल्योपरि पुष्पांजलि क्षिपेत्)

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ।।
तुमने मुक्ति पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्।।
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

24 परिग्रह रहित जिन के अर्घ्य

(चौपाई)

जो 'मिथ्या' भाव जगावें, वे सत् श्रद्धा न पावें।
जो है मिथ्यात्व के धारी, वह दुख पाते हैं भारी।।1।।

ॐ ह्रीं मिथ्या परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो हैं 'कषाय' जयकारी, इस जग में मंगलकारी।
हैं क्रोध कषाय के धारी, वह दुख पाते हैं भारी।।2।।

ॐ ह्रीं कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो 'मान' करें जग प्राणी, वह स्वयं उठाते हानी।
हैं मान कषाय के धारी, वह दुख पाते हैं भारी।।3।।

ॐ ह्रीं मान परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जो करते 'मायाचारी', दुख सहते वह नर नारी।
हैं माया कषाय के धारी, वह दुख पाते हैं भारी।।4।।

ॐ ह्रीं माया परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जग के सब 'लोभी' प्राणी, मानो पापों की खानी।
हैं लोभ कषाय के धारी, वह दुख पाते हैं भारी।।5।।

ॐ ह्रीं लोभ परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(तांटक छन्द)

'हास्य' कषाय करें जो प्राणी, वह दु:खों को पाते हैं।
शंकित होते हैं औरों से, निज संसार बढ़ाते हैं॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥6॥

ॐ ह्रीं हास्य नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'रति' उदय में जिनके आवे, वे सब राग बढ़ाते हैं।
राग आग में जलकर प्राणी, दुर्गति पंथ सजाते हैं॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥7॥

ॐ ह्रीं रति नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'अरति' भाव मन में आने से, अप्रीति का भाव जगे।
बैर भाव के कारण मानव, कर्माश्रव में शीघ्र लगे॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥8॥

ॐ ह्रीं अरति नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कुछ भी इष्टानिष्ट देखकर, मन में 'शोक' जगाते हैं।
नित कषाय में जलने वाले, कर्म बन्ध ही पाते हैं।
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥9॥

ॐ ह्रीं शोक नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

देख कोई भयकारी वस्तु, मन में भय उपजाते हैं।
भय के कारण व्याकुल होकर, शांत नहीं रह पाते हैं॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥10॥

ॐ ह्रीं भय नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

स्व-पर के गुण दोष देखकर, जो ग्लानी उपजाते हैं।
रहे कषाय 'जुगुप्सा' धारी, दुर्गति में ही जाते हैं॥

इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥11॥

ॐ ह्रीं जुगुप्सा नो कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पुरुष जन्य जो भाव प्राप्त कर, रमने को खोजें नारी।
'पुरुष वेद' के धारी हैं वह, व्याकुल रहते हैं भारी॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥12॥

ॐ ह्रीं पुरुष वेद कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

स्त्री जन्य भाव पाकर के, पुरुषों में जो रमण करें।
'स्त्री वेद' प्राप्त करके वह, दुर्गति में ही गमन करें॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥13॥

ॐ ह्रीं स्त्री वेद कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मन में नर नारी की आशा, रखते हैं वह 'षण्ड' कहे।
करते हैं उत्पात विषय गत, भारी जो उद्दण्ड रहे॥
इस कषाय के नाशी प्राणी, तीर्थंकर पद पाते हैं।
उनके चरणों जग के सारे, प्राणी शीश झुकाते हैं॥8॥

ॐ ह्रीं नपुंसक वेद कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(छन्द भुजंगप्रयात)

खेती के मन में जो भाव जगाए, 'क्षेत्र परिग्रह' के धारी कहाए।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥15॥

ॐ ह्रीं क्षेत्र परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कोठी महल बंगला जो बनावें, 'वास्तु परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥16॥

ॐ ह्रीं वास्तु परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चाँदी की मन में जो आशा जगावें, 'परिग्रह हिरण्य' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥17॥

ॐ ह्रीं हिरण्य कषाय परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सोने के आभूषण आदी मंगावें, 'परिग्रह जो स्वर्ण' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥18॥

ॐ ह्रीं स्वर्ण परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पशुओं के पालन में मन को लगावें, वह 'धन परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥19॥

ॐ ह्रीं धन परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

लेकर के धान्य जो कोठे भरावें, वह 'धान्य परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥20॥

ॐ ह्रीं धान्य परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सेवा के हेतु जो नौकर बुलावें, वह 'दास परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥21॥

ॐ ह्रीं दास परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

स्त्री से अपनी जो सेवा करावें, वे 'दासी परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥22॥

ॐ ह्रीं दासी परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कपड़े जो नये-नये कइ लेकर के आवें, वे 'कुप्य परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥23॥

ॐ ह्रीं कुप्य परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

भाड़े या बर्तन से कोठे भरावें, वह 'भाण्ड परिग्रह' के धारी कहावें।
बहिरंग तजकर परिग्रह ये भाई, जिनवर ने मुक्ति श्री श्रेष्ठ पाई॥24॥

ॐ ह्रीं भाण्ड परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा– परिग्रह चौबिस का प्रभु, करके पूर्ण विनाश।
शिवपथ के राही बने, कीन्हे शिवपुर वास॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति परिग्रह रहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चतुर्थ वलयः

दोहा– छियालिस पाए मूलगुण, धर्मनाथ भगवान।
पुष्पाञ्जलि करके यहाँ, करते हम गुणगान॥

(चतुर्थ वलयोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ॥
तुमने मुक्ति पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्॥
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जन्म के अतिशय

(नरेन्द्र छन्द)

'स्वेद रहित' तन जानो अनुपम, जन-जन का मन मोहे।
प्रभु के जन्म समय से अतिशय, शुभ तन में यह सोहे।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें॥1॥

ॐ ह्रीं स्वेद रहित सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

गर्भ से जन्मे हैं माता के, फिर भी निर्मल गाये।
'मल मूत्रादि रहित' देह प्रभु, अतिशय पावन पाये।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें॥2॥

ॐ ह्रीं निहार मूत्रादि रहित सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तन का 'रुधिर श्वेत' है अनुपम, अतिशय पावन गाया।
रुधिर लाल नहि यह शुभ अतिशय, जन्म समय का पाया॥
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें॥3॥

ॐ ह्रीं श्वेत रक्त सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तन सुडोल आकार मनोहर, 'सम चतुष्क' बतलाया।
जिस अवयव का माप है जितना, उतना ही मन भाया।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।4।।

ॐ ह्रीं सम चतुष्क संस्थान सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'वज्र वृषभ नाराच' संहनन, जिनवर तन में पाते।
गणधरादि नित हर्षित मन से, प्रभु का ध्यान लगाते।।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।5।।

ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराच संहनन सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कामदेव का रूप लजावे, जिन प्रभु तन के आगे।
'अतिशय रूप' मनोहर प्रभु का, देखत में शुभ लागे।।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।6।।

ॐ ह्रीं अतिशय रूप सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

परम 'सुगंधित तन' है प्रभु का, अनुपम महिमाकारी।
अन्य सुरभि नहिं है इस जग में, प्रभु तन सम मनहारी।।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।7।।

ॐ ह्रीं परम सुगंधित तन सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'एक हजार आठ शुभ लक्षण', प्रभु के तन में सोहे।
अद्भुत महिमाशाली जिनवर, त्रिभुवन का मन मोहे।।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।8।।

ॐ ह्रीं सहस्राष्ट शुभ लक्षण सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तुलना रहित 'अतुल बल' प्रभु के, अतिशय तन में गाया।
इन्द्र चक्रवर्ति से अद्भुत, शक्ती मय बतलाया।

सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।9।।

ॐ ह्रीं अतुल्य बल सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'हित मितप्रिय वचन' अमृत सम, प्रभु के होते भाई।
त्रिभुवन के प्राणी सुनते हों, मंत्र मुग्ध सुखदायी।।
सुर नर असुर इन्द्र विद्याधर, जिन प्रभु के गुण गावें।
भक्ति भाव से जो भी पूजें, वह अनुपम सुख पावें।।10।।

ॐ ह्रीं प्रियहित वचन सहजातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

केवलज्ञान के अतिशय

(रोला छन्द)

'चार-चार सौ कोष', चारों दिश में गाया।
होय सुभिक्ष सुकाल, यह अतिशय प्रभु पाया।।
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे।।11।।

ॐ ह्रीं गव्यूति शत् चतुष्टय सुभिक्षत्व घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पाते केवल ज्ञान, 'नभ में गमन' करे हैं।
देव रचावें पुष्प, तिन पर चरण धरे हैं।
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे।।12।।

ॐ ह्रीं आकाश गमन घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जहाँ गमन प्रभु होय, प्राणी 'वध न' होवे।
दया सिन्धु जिन देव, जग की जड़ता खोवे।।
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे।।13।।

ॐ ह्रीं अदयाभाव घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'कवलाहार विहीन' रहते हैं, जिन स्वामी।
कुछ कम कोटि पूर्व रहें, जिन अन्तर्यामी॥
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥14॥

ॐ ह्रीं कवलाहार रहित घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

हो 'उपसर्गाभाव', अतिशय यह शुभकारी।
सुर नर पशू अजीव कृत उपसर्ग निवारी॥
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥15॥

ॐ ह्रीं उपसर्गाभाव घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

समवशरण में देव, 'चउ दिश दर्शन' देवें।
मुख पूरब में होय सबका, दुख हर लेवें॥
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥16॥

ॐ ह्रीं चतुर्मुखत्व घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'सब विद्या के एक, ईश्वर' आप कहाए।
तुम्हें पूजते भव्य, ज्ञान कला प्रगटाए॥
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥17॥

ॐ ह्रीं सर्व विद्येश्वर घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

परमौदारिक देह पुद्गलमय, प्रभु पाए।
फिर भी 'छाया हीन' अतिशय, यह प्रगटाए॥
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥18॥

ॐ ह्रीं छाया रहित अतिशय घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'पलक झपकती नाहिं,' न ही हो टिमकारी।
सौम्य दृष्टि नाशाग्र, लगती अतिशय प्यारी॥
'यह अतिशय हे नाथ!' जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥19॥

ॐ ह्रीं अक्ष स्पंद रहित घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

नहीं बढ़ें नख केश, केवल ज्ञानी होते।
दिव्य शरीर विशेष, मन का कल्मष खोते।
यह अतिशय हे नाथ! जन-जन के मन आवे।
तव चरणाम्बुज ध्याय, प्राणी शिव सुख पावे॥20॥

ॐ ह्रीं समान नख केशत्व घातिक्षयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

14 देवकृत अतिशय

(छन्द जोगीरासा)

भाषा है 'सर्वार्धमागधी', जिन अतिशय शुभकारी।
भव-भव के दुख हरने वाली, भव्यों को सुखकारी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥21॥

ॐ ह्रीं अर्धमागधी भाषाधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बैर भाव सब तज देते हैं, जाति विरोधी प्राणी।
'मैत्री भाव' बढ़े आपस में, जिन मुद्रा कल्याणी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥22॥

ॐ ह्रीं सर्व मैत्री भावधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'सब ऋतु के फल फूल' खिलें शुभ, एक साथ मनहारी।
कई योजन तक होवे ऐसा, अतिशय अद्भुत भारी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥23॥

ॐ ह्रीं सर्वऋतुफलादि तरू देपोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

रत्नमयी पृथ्वी 'दर्पण तल सम', होवे अतिशयकारी।
प्रभु के विहरण हेतु रचना, करें देवगण सारी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥24॥

ॐ ह्रीं आदर्श तल प्रतिमा रत्नमई देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वायुकुमार देव विक्रिया कर, 'शीतल पवन' चलावें।
हो अनुकूल वायु विहार में, ये अतिशय प्रगटावें।
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥25॥

ॐ ह्रीं सुगंधित विहरण मनुगत वायुत्व श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

परमानन्द प्राप्त कर प्राणी, जिन प्रभु के गुण गाते।
भय संकट क्लेशादि रोग सब, मन में नहीं सताते॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥26॥

ॐ ह्रीं सर्वानंदकारक देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सुखद वायु चलने से 'धूलि, कंटक न' रह पावें।
प्रभु विहार के समय देवगण, भूमी स्वच्छ बनावे॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥27॥

ॐ ह्रीं वायुकुमारोपशमित धूलि कंटकादि देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मेघ कुमार करें नित वृष्टि, गंधोदक की भाई।
इन्द्रराज की आज्ञा से हो, यह प्रभु की प्रभुताई॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥28॥

ॐ ह्रीं मेघकुमार कृत गंधोदक वृष्टि देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'स्वर्ण कमल' की रचना सुरगण, श्री विहार में करते।
चरण कमल में नत मस्तक हो, अपना मस्तक धरते॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥29॥

ॐ ह्रीं चरण कमल तल रचित स्वर्ण कमल देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अष्ट द्रव्य मंगल मय पावन, सुरगण जहाँ सजाते
देवों कृत अतिशय यह सुन्दर, सबको सुखी बनाते॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥30॥

ॐ ह्रीं अष्ट मंगल द्रव्य देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शरद ऋतु सम स्वच्छ सुनिर्मल, गगन होय मनहारी।
उल्कापात धूम्र आदि से, रहित होय शुभकारी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥31॥

ॐ ह्रीं शरदकाल वन्निर्मल गगन देवोपनीतिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

शरद मेघ सम सर्व दिशाएँ, होवें जन मनहारी।
रोगादि पीड़ाएँ हरते, देव सभी की सारी॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥32॥

ॐ ह्रीं आकाश गमन देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चतुर्निकाय के देव शीघ्र ही, प्रभु भक्ति को आओ।
इन्द्राज्ञा से देव बुलाते, आकर प्रभु गुण गाओ॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥33॥

ॐ ह्रीं आकाशे जय-जयकार देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

'धर्म चक्र' ले यक्ष इन्द्र शुभ, आगे आगे जावें।
चार दिशा में दिव्य चक्र ले, मानो प्रभु गुण गावें॥
अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति भाव से, श्री जिन के गुण गाएँ।
अतिशय पुण्य बढ़ाके हम भी, रत्नत्रय निधि पाएँ॥34॥

ॐ ह्रीं धर्मचक्र चतुष्टय देवोपनीतातिशयधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अनन्त चतुष्टय

(चाल छन्द)

'दर्शन अनन्त' गुण पाए, प्रभु लोकालोक दर्शाए।
हम जिनवर के गुण गाएँ, पद सादर शीश झुकाएँ॥35॥

ॐ ह्रीं अनन्त दर्शन सहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

प्रभु ज्ञानावरणी नाशे, फिर 'केवल ज्ञान' प्रकाशे
हम जिनवर के गुण गाएँ, पद सादर शीश झुकाएँ॥36॥

ॐ ह्रीं अनन्तज्ञान सहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

प्रभु मोह कर्म के नाशी, जिनवर 'अनन्त सुखराशी'।
हम जिनवर के गुण गाएँ, पद सादर शीश झुकाएँ॥37॥

ॐ ह्रीं अनन्तसुख सहित श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

न अन्तराय रह पावे, प्रभु 'वीर्यानन्त' प्रगटावें।
हम जिनवर के गुण गाएँ, पद सादर शीश झुकाएँ॥38॥

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(अष्ट प्रातिहार्य)

(नरेन्द्र छन्द)

शत इन्द्रों से अर्चित अर्हत्, प्रातिहार्य वसु पाये।
'तरु अशोक' शुभ प्रातिहार्य जिन, विशद आप प्रगटाये॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥39॥

ॐ ह्रीं तरु अशोक सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

सघन 'पुष्प की वृष्टी' करके, नभ में सुर हर्षाते।
ऊर्ध्वमुखी हो पुष्प बरसते, जिन महिमा दिखलाते॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥40॥

ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टि सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

देव शरण में हुए अलंकृत, 'चौसठ चँवर' ढुराते।
श्वेत चवर ये नम्रभूत हो, विनय पाठ सिखलाते॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥41॥

ॐ ह्रीं चतु:षष्टि चंवर सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

घाति कर्म का क्षय होते ही, भामण्डल प्रगटावे।
कोटि सूर्य की कांति जिसके, आगे भी शर्मावे॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥42॥

ॐ ह्रीं भामण्डल सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

आओ-आओ जग के प्राणी, प्रभु जगाने आये।
श्रेष्ठ 'दुन्दुभि' के द्वारा शुभ, वाद्य बजा के गाये॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥43॥

ॐ ह्रीं देव दुंदुभि सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

तीन लोक के ईश प्रभु हैं, 'तीन छत्र' बतलाते।
गुरु लघु तम लघु ऊर्ध्व में, धवल कांति फैलाते॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥44॥

ॐ ह्रीं छत्र त्रय सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

अर्हत् के 'गम्भीर वचन' शुभ, प्रमुदित होकर पाते।
मोह महातम हरने वाले, सभी समझ में आते॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥45॥

ॐ ह्रीं दिव्य ध्वनि सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वा.।

समवशरण के मध्य रत्नमय, 'सिंहासन' मनहारी।
कमलासन पर अधर विराजे, अर्हत जिन त्रिपुरारी॥
शत इन्द्रों से पूज्य जिनेश्वर, की हम महिमा गाते।
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाकर, सादर शीश झुकाते॥46॥

ॐ ह्रीं सिंहासन सत्प्रातिहार्य सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा– छियालिस पाए मूलगुण, धर्मनाथ भगवान।
यह गुण पाने के लिए, करते हम गुणगान॥47॥

ॐ ह्रीं षट् चत्त्वारिंशद गुण सहिताय श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचम वलय:

दोहा– **अड़तालिस यह ऋद्धियाँ, पाते जिन अरहंत।**
पुष्पाञ्जलि करते चरण, पाने भव का अंत॥

(पंचम वलयोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

स्थापना (वीर छन्द)

हे धर्मनाथ! हे धर्मतीर्थ!, तुम धर्म ध्वजा को फहराओ।
तुम मोक्ष मार्ग के नेता हो, प्रभु राह दिखाने को आओ॥
तुमने मुक्ति पद वरण किया, तव चरणों हम करते अर्चन।
मम हृदय कमल के बीच कर्णिका, में आकर तिष्ठो भगवन्॥
भक्तों ने भाव सहित भगवन्, भक्ति के हेतु पुकारा है।
न देर करो उर में आओ, यह तो अधिकार हमारा है॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र-अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वानन।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितौ भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

48 ऋद्धियों के अर्घ्य

(चौपाई)

केवल बुद्धि ऋद्धि के धारी, चार घातिया नाशनहारी।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥1॥

ॐ ह्रीं केवल बुद्धि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

उत्तम तप जिन मुनिवर पाते, देशावधि मुनि ज्ञान जगाते।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥2॥

ॐ ह्रीं देशावधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

परमावधि ज्ञान प्रगटावें, फिर निज केवलज्ञान जगावें।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥3॥

ॐ ह्रीं परमावधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सर्वावधी ज्ञान के धारी, केवल ज्ञानी हों शिवकारी।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥4॥

ॐ ह्रीं सर्वावधी ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अनन्तावधि मुनिवर जी पाएँ, परम विशुद्धी हृदय जगाएँ।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥5॥

ॐ ह्रीं अनन्तावधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बीज बुद्धि ऋद्धीधर गाये, बीज भूत सब ज्ञान जगाए।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥6॥

ॐ ह्रीं बीज बुद्धि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पदानुसारिणी ऋद्धीधारी, जाने सब आगम अनगारी।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥7॥

ॐ ह्रीं पदानुसारिणी ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

संभिन्न संश्रोतृ ऋद्धिधर भाई, जाने सब भाषा सुखदायी
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥8॥

ॐ ह्रीं संभिन्न संश्रोतृ ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

स्वयंबुद्ध ऋद्धि जो पाएँ, निज आतम का ज्ञान जगाएँ।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥9॥

ॐ ह्रीं स्वयं बुद्ध ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

प्रत्येक बुद्ध ऋद्धीधर ज्ञानी, पाएँ संयमादि कल्याणी।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते॥10॥

ॐ ह्रीं प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बोधित बुद्ध ऋद्धि शुभ पाते, आगम में निज बोधि जगाते।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।11।।
ॐ ह्रीं बोधित बुद्ध ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

ऋजुमति ज्ञानी शुभकारी, सरल भाव जानें अनगारी।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।12।।
ॐ ह्रीं ऋजुमति ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विपुलमति ऋद्धी शुभ पाते, आगम से निज बोधि जगाते।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।13।।
ॐ ह्रीं विपुल मति ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कोष्ठ बुद्धि ऋद्धी जो पावें, भिन्न-भिन्न सब विषय बतावें।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।14।।
ॐ ह्रीं कोष्ठ बुद्धि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दश पूर्वित्व ऋद्धिधर गाये, विद्याओं की चाह भुलाए।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।15।।
ॐ ह्रीं दश पूर्वित्व ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चौदह पूरवधर श्रुत पावें, ऋद्धि से प्रत्यक्ष जगावें।
तप कर मुनि ऋद्धी प्रगटाते, उनके पद हम शीश झुकाते।।16।।
ॐ ह्रीं चौदह पूर्व ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(बारहमासा चाल)

ज्योतिष आदिक लक्षण जाने, निमित्त ऋद्धि के द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।17।।
ॐ ह्रीं ज्योतिष चारण ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बहु विधि अणिमादिक ऋद्धि शुभ, पाए विक्रिया धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।18।।
ॐ ह्रीं अणिमादिक ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

भूमि जल जन्तु आदिक का, घात न हो मुनि द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।19।।
ॐ ह्रीं भूचारण ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पग छूते ही चलें गगन में, चारण ऋद्धीधारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।20।।
ॐ ह्रीं चारण ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

खग सम चलें गगन में मुनिवर, गगन चारिणी धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धि पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।21।।
ॐ ह्रीं गगनचारिणी ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वाद कुशल को करें पराजित, परामर्श ऋद्धीधर जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।22।।
ॐ ह्रीं परामर्ष ऋद्धि धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विष को अमृत करें ऋद्धि से, आशीनिर्विष धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।23।।
ॐ ह्रीं आशी निर्विष ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विष का करें विनाश देखते, दृष्टी निर्विषधारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।24।।
ॐ ह्रीं दृष्टी निर्विष ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

उग्र सुतप की करें साधना, मुनिवर ऋद्धी धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।25।।
ॐ ह्रीं उग्र सुतप ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बढ़े देह की कांती अनुपम, दीप्त ऋद्धि के द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।26।।
ॐ ह्रीं दीप्त सुतप ऋद्धि धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

चन्द्र कला सम बढ़े साधना, तप्त सुतप के द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।27।।
ॐ ह्रीं तप्त सुतप ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वृद्धिंगत नित करें साधना, ऋद्धि महातप द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।28।।

ॐ ह्रीं महातप ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

गिरि सरिता तट करें साधना, ऋद्धि घोर तप द्वारा जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।29।।

ॐ ह्रीं घोर तप ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वन में निर्विकार हो तिष्ठें, ऋद्धि पराक्रम धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।30।।

ॐ ह्रीं घोर पराक्रम ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

महागुणों को पाने वाले, ऋद्धि घोर गुण धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।31।।

ॐ ह्रीं घोर गुण ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

काम विजय को पाने वाले, ऋद्धि ब्रह्मचर्य धारी जी।
उत्तम तप कर ऋद्धी पाते, श्रेष्ठ सुगुण अनुसारी जी।।32।।

ॐ ह्रीं घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(भुजंगप्रयात)

आमर्ष औषधि जिन सिद्ध पाए।
सकल रोग स्पर्श करते नशाए।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।33।।

ॐ ह्रीं आमर्षौषधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

क्ष्वेलौषधि श्रेष्ठ ऋद्धि के धारी।
बने क्ष्वेल औषधि है ऋद्धी सुखारी।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।34।।

ॐ ह्रीं क्ष्वेलौषधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विडौषधि जिन्हें प्राप्त ऋद्धि है भाई।
बने मूत्र औषधि शुभम् सौख्यदायी।

सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धि के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।35।।

ॐ ह्रीं विडौषधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बने जल्ल औषधि मुनि तन का प्यारा।
ऋद्धी का पाया है जिनने सहारा।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।36।।

ॐ ह्रीं जल्ल औषधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

करे मुनि को स्पर्श वायु बहाए।
तभी रोग वायु सभी के नशाए।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।37।।

ॐ ह्रीं सर्वौषधि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मन बल बढ़ाते हैं मुनि ऋद्धिधारी।
करें श्रुत का चिन्तन मुहूरत में भारी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।38।।

ॐ ह्रीं मन बल ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

वचन बल करें प्राप्त ऋद्धी के धारी।
करें श्रुत का वर्णन मुहूरत में भारी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।39।।

ॐ ह्रीं वचन बल ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मुनि काय बल ऋद्धि धारी जो होते।
वे श्रम खेद तन की थकावट के खोते।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।40।।

ॐ ह्रीं काय बल ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मुनि क्षीर स्रावि शुभ ऋद्धि जो पावें।
विरस भोज को क्षीर सम जो बनावें।।

सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।41।।

ॐ ह्रीं क्षीर स्त्रावी ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बने रुक्ष आहार रसदार भाई।
मुनि सर्पि स्त्रावी के कर सौख्यदायी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।42।।

ॐ ह्रीं सर्पि स्त्रावी ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मधुस्त्रावि के हाथ में रुक्ष आहार।
मधु सम मधुर, हो शुभ ऋद्धि के आधार।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।43।।

ॐ ह्रीं मधुस्त्रावि ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

मुनि अमृतस्त्रावि हैं ऋद्धी के धारी।
बने रुक्ष आहार, अमृत सा भारी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।44।।

ॐ ह्रीं अमृतस्त्रावि ऋद्धि धारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जहाँ जीमते ऋद्धि अक्षीण धारी।
बढ़े श्रेष्ठ आहार अक्षय हो भारी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।45।।

ॐ ह्रीं अक्षीण ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

बढ़े सिद्ध राशि हो वर्धमान भारी।
बने सिद्ध वह भी जो हैं ऋद्धि धारी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।46।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञान ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

करें दर्श सिद्धायतन के निराले।
मुनिश्रेष्ठ हैं जो महत् ज्ञान वाले।

सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।47।।

ॐ ह्रीं सिद्धायतन ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

णमो भयवदोमहदि महावीर नामी।
कहाए प्रभु वर्धमान मोक्षगामी।।
सुतप धारते श्रेष्ठ ऋद्धी के धारी।
विशद ढोक ऋषि के चरण में हमारी।।48।।

ॐ ह्रीं वर्धमान ऋद्धिधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा– अड़तालिस यह ऋद्धियाँ, पाते हैं भगवान।
कर्म नाश करके विशद, प्राप्त करें निर्वाण।।49।।

ॐ ह्रीं अष्टचत्त्वारिंशद ऋद्धीधारक श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जाप्य–ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐंम् अर्हं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय नमः स्वाहा।

जयमाला

दोहा– धर्मादि त्रय वर्ग तज, पावें मोक्ष महान।
जयमाला गाते यहाँ, करने जिन गुणगान।।

(सखी छन्द)

जय धर्मनाथ हितकारी, इस जग में मंगलकारी।
पितु भानुराज कहलाए, प्रभु मात सुव्रता पाए।।
प्रभु चार ध्यान बतलाए, दो उसमें हेय कहाए।
वह आर्त रौद्र हैं भाई, होते जग में दुखदायी।।
है धर्म शुक्ल शुभकारी, यह ध्यान रहे हितकारी।
मुक्ती के कारण गाये, ये उपादेय कहलाए।।
प्रभु शुक्ल ध्यान जब ध्यायें, तब घाती कर्म नशाएँ।
फिर केवल ज्ञान जगाएँ, सुर समवशरण बनवाएँ।।
सौ इद्र शरण में आवें, शुभ प्रातिहार्य प्रगटावें।
प्रभु जीवों को हितकारी, उपदेश दिए शुभकारी।।
प्रभु चिदानन्द कहलाए, मुनिवृन्द प्रभु गुण गाए।
जो दर्श आपका पाए, वह निज सौभाग्य जगाए।।

मम पुण्य उदय जो आया, प्रभु दर्श आपका पाया।
हम काल अनादी स्वामी, भटके जग अन्तर्यामी॥
तुम ही ब्रह्मा कहलाए, विष्णु महेश तुम गाए।
तुमने शिव पद को पाया, जीवों को मार्ग दिखाया॥
हम शरण आपकी आए, इस जग से प्रभु सताए।
अब मुक्ती राह दिखाओ, हमको भव पार लगाओ॥
जय ऋद्धि सिद्धि के दाता, इस जग के भाग्य विधाता।
तव भक्ति से गुण गावें, वे जीव सुखी हो जावें॥
प्रभु जग दुख मैटन हारे, जन जन के रहे सहारे।
जो चरण शरण में आया, जग का सुख वैभव पाया॥
अब आई मेरी बारी, भव पार करो त्रिपुरारी।
हम 'विशद' भावना भाते, पद सादर शीश झुकाते॥

(छन्द घत्तानन्द)

जय धर्म जिनेशं, हित उपदेशं, धर्म विशेषं दातारं।
जय धर्माधारं, शिव कर्तारं, भव हरतारं सुखकारं॥

ॐ ह्रीं तीर्थंकर श्री धर्मनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा– जिन शासन के कोष जिन, दिव्य भानु सम रूप।
धर्मनाथ को पूजकर, पाएँ धर्म स्वरूप॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

प्रशस्ति

ॐ नमः सिद्धेभ्यः श्री मूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये बलात्कार गणे सेन गच्छे नन्दी संघस्य परम्परायां श्री आदि सागराचार्य जातास्तत् शिष्यः श्री महावीरकीर्ति आचार्य जातास्तत् शिष्याः श्री विमलसागराचार्या जातास्तत शिष्या श्री भरत सागराचार्य श्री विराग सागराचार्याः जातास्तत् शिष्याः आचार्य विशदसागराचार्य जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे दिल्ली प्रान्ते शास्त्री नगर स्थित 1008 श्री शांतिनाथ दि. जैन मंदिर मध्ये अद्य वीर निर्वाण सम्वत् 2538 वि.सं. 2069 मासोत्तम मासे द्वितिय भादौ मासे शुक्लपक्षे बारसतिथि दिन गुरुवासरे श्री धर्मनाथ विधान रचना समाप्ति इति शुभं भूयात्।

श्री धर्मनाथ चालीसा

दोहा– रहे पूज्य नव देवता, तीनों लोक महान्।
धर्मनाथ भगवान का, करते हम गुणगान॥
चालीसा गाते यहाँ, भाव सहित शुभकार।
वन्दन करते पद युगल, जिन पद बारम्बार॥

(चौपाई)

लोकालोक रहा शुभकारी, मध्य लोक जिसमें मनहारी।
मध्य में जम्बूद्वीप बताया, भरत क्षेत्र जिसमें शुभ गाया॥
जिसमें अंग देश है भाई, रत्नपुरी नगरी सुखदायी।
भानुराय जिसमें कहलाए, कुरु वंश के स्वामी गाए॥
कश्यप गोत्री जो कहलाए, महारानी, सुव्रता जो पाए।
वैसाख शुक्ल त्रयोदशी जानो, प्रातःकाल समय पहिचानो॥
शुभ नक्षत्र रेवती पाए, चयकर सर्वार्थ सिद्धि से आए।
तीर्थंकर प्रकृति शुभ पाए, प्रभु जी माँ के गर्भ में आए॥
माघ शुक्ल तेरस शुभकारी, पुष्प नक्षत्र रहा मनहारी।
अतिशय जन्म प्रभुजी पाए, जन्म कल्याणक जो कहलाए॥
कर्क राशि का योग बताया, राशि स्वामी चन्द्र कहाया।
स्वर्ण वर्ण तन का है भाई, धनुष पैंतालिस है ऊँचाई॥
वर्ष लाख दश आयु पाए, वज्रदण्ड पहिचान कराए।
उल्कापात देखकर स्वामी, दीक्षा पाए अन्तर्यामी॥
माघ शुक्ल तेरस शुभकारी, पुष्प नक्षत्र रहा मनहारी।
दीक्षा नगर रत्नपुर गाया, सायंकाल का समय बताया॥
देव पालकी लेकर आये, नागदत्ता शुभ नाम बताए।
शालिवन उद्यान बताया, दीर्घपर्ण तरुवर कहलाया॥
एक सौ अस्सी धनुष ऊँचाई, दीक्षा वृक्ष की जानो भाई।
एक सहस राजा भी आए, साथ में प्रभु के दीक्षा पाए॥
दो उपवास आपने कीन्हें, शुभ क्षीरान्न बाद में लीन्हे।
धर्म मित्र दाता कहलाया, पाटलिपुत्र नगर शुभ गाया॥
एक वर्ष तप काल बताया, बाद में केवलज्ञान जगाया।
पौष शुक्ल पूनम शुभ जानो, संध्याकाल समय शुभ मानो॥

इन्द्र राज-चरणों में आया, धन कुबेर को साथ में लाया।
साथ में देव अन्य कई आए, समवशरण रचना बनवाए॥
पाँच योजन विस्तार बताया, पद्मासन प्रभु ने शुभ पाया।
साथ में केवलज्ञान जगाए, साढ़े चार सहस बतलाए॥
सात हजार विक्रियाधारी, नौ सौ पूरब धर अविकारी।
चालीस सहस सात सौ भाई, शिक्षक की संख्या बतलाई॥
चार हजार पाँच सौ जानो, मनःपर्यय ज्ञानी पहिचानो।
अवधि ज्ञानधारी मुनि आए, तीन सहस छह सौ बतलाए॥
दो हजार आठ सौ भाई, वादी मुनि संख्या बतलाई।
प्रभु के साथ मुनीश्वर आए, चौंसठ सहस पूर्ण कहलाए॥
गणधर तैंतालिस कहलाए, अरिष्टसेन प्रथम गणि कहाए।
यक्ष किंपुरुष जानो भाई, अनन्तमति यक्षी कहलाई॥
प्रभु सम्मेद शिखर पर आए, कूट सुदत्तवर अनुपम गाए।
योग निरोध किए जिन स्वामी, एक माह पहले शिवगामी॥
कायोत्सर्गासन प्रभु पाए, स्वामी प्रातः मोक्ष सिधाए।
चौथ ज्येष्ठ शुक्ला की जानो, मोक्ष कल्याणक की तिथिमानो॥
पन्द्रहवें तीर्थंकर गाए, जग को मुक्ति मार्ग दिखाए।
जिन प्रतिमाएँ हैं शुभकारी, वीतराग मुद्रा अविकारी॥
दर्शन कर सद्दर्शन पाएँ, अपने हम सौभाग्य जगाए।
प्रभु की महिमा है शुभकारी, तीन लोक में मंगलकारी॥

दोहा– चालीसा चालीस दिन, पढ़ें सुने जो लोग।
सुख शांति सौभाग्य का, मिले उन्हें संयोग॥
धर्मनाथ के चरण को, ध्याये जो गुणवान।
अल्प समय में ही 'विशद', पावे वह निर्वाण॥

श्री 1008 धर्मनाथ भगवान की आरती

(तर्ज–जीवन है पानी की बूँद)

धर्मनाथ के दर पे शुभ, दीप जलाए रे।
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।टेक

मात सुव्रता के जाये, पिता भानु नृप कहलाए।
रत्नपुरी में जन्म लिया, उस धरती को धन्य किया॥
वज्र चिह्न जिनवर की–हो-हो-पहिचान बताए रे।
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।1॥

बैशाख सुदी त्रयोदशी जानो, गर्भ में प्रभु आये मानो।
माघ सुदी तेरस आई, जन्म लिया प्रभु ने भाई।
दस लाख पूर्व की आयु, हो-हो जिनवर जी पाए रे।
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।2॥

धनुष पैतालिस ऊँचाई, जिनवर के तन की गाई।
माघ सुदी तेरस भाई, प्रभु जी ने दीक्षा पाई।
समवशरण आकर के, हो-हो शुभ देव बनाए रे।
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।3॥

पौष पूर्णिमा दिन आया, 'विशद' ज्ञान प्रभु ने पाया।
अनन्त चतुष्टय प्रकटाए, देव इन्द्र सब सिरनाए।
सम्मेद शिखर पे जाके, हो-हो प्रभु ध्यान लगाए रे॥
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।4॥

ज्येष्ठ शुक्ल की चौथ अहा, मंगलमय दिन श्रेष्ठ कहा।
जिनवर ने शिवपद पाया, मुक्ति वधू को अपनाया।
जिन भक्ति से हमको, हो-हो शिव पद मिल जाए रे।
जिनवर हो–जिनवर, सब आरती गाए रे।।5॥

प. पू. 108 आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज की पूजन

पुण्य उदय से हे! गुरुवर, दर्शन तेरे मिल पाते हैं।
श्री गुरुवर के दर्शन करके, हृदय कमल खिल जाते हैं।।
गुरु आराध्य हम आराधक, करते उर से अभिवादन।
मम् हृदय कमल से आ तिष्ठो, गुरु करते हैं हम आह्वानन्।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वानन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम् सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सांसारिक भोगों में फँसकर, ये जीवन वृथा गंवाया है।
रागद्वेष की वैतरणी से, अब तक पार न पाया है।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, निर्मल जल हम लाए हैं।
भव तापों का नाश करो, भव बंध काटने आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोध रूप अग्नि से अब तक, कष्ट बहुत ही पाये हैं।
कष्टों से छुटकारा पाने, गुरु चरणों में आये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, चंदन घिसकर लाये हैं।
संसार ताप का नाश करो, भव बंध नशाने आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय संसार ताप विध्वंशनाय चंदनं नि. स्वा.।

चारों गतियों में अनादि से, बार-बार भटकाये हैं।
अक्षय निधि को भूल रहे थे, उसको पाने आये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अक्षय अक्षत लाये हैं।
अक्षय पद हो प्राप्त हमें, हम गुरु चरणों में आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतान् नि. स्वा.।

काम बाण की महावेदना, सबको बहुत सताती है।
तृष्णा जितनी शांत करें वह, उतनी बढ़ती जाती है।।

विशद सिंधु के श्री चरणों में, पुष्प सुगंधित लाये हैं।
काम बाण विध्वंश होय गुरु, पुष्प चढ़ाने आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय कामबाण पुष्पं निर्व. स्वा.।

काल अनादि से हे गुरुवर! क्षुधा से बहुत सताये हैं।
खाये बहु मिष्ठान जरा भी, तृप्त नहीं हो पाये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, नैवेद्य सुसुन्दर लाये हैं।
क्षुधा शांत कर दो गुरु भव की! क्षुधा मेटने आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वा.।

मोह तिमिर में फंसकर हमने, निज स्वरूप न पहिचाना।
विषय कषायों में रत रहकर, अंत रहा बस पछताना।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, दीप जलाकर लाये हैं।
मोह अंध का नाश करो, मम् दीप जलाने आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय मोहान्धकार विध्वंशनाय दीपं नि. स्वा.।

अशुभ कर्म ने घेरा हमको, अब तक ऐसा माना था।
पाप कर्म तज पुण्य कर्म को, चाह रहा अपनाना था।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, धूप जलाने आये हैं।
आठों कर्म नशाने हेतू, गुरु चरणों में आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वा.।

पिस्ता अरु बादाम सुपाड़ी, इत्यादि फल लाये हैं।
पूजन का फल प्राप्त हमें हो, तुमसा बनने आये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, भाँति-भाँति फल लाये हैं।
मुक्ति वधु की इच्छा करके, गुरु चरणों में आये हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फलं नि. स्वा.।

प्रासुक अष्ट द्रव्य हे गुरुवर! थाल सजाकर लाये हैं।
महाव्रतों को धारण कर लें, मन में भाव बनाये हैं।।
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अर्घ समर्पित करते हैं।
पद अनर्घ हो प्राप्त हमें गुरु, चरणों में सिर धरते हैं।।

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व. स्वा.।

जयमाला

दोहा– विशद सिंधु गुरुवर मेरे, वंदन करूँ त्रिकाल।
मन-वन-तन से गुरु की, करते हैं जयमाला॥

गुरुवर के गुण गाने को, अर्पित है जीवन के क्षण-क्षण।
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं, हर्षायें धरती के कण-कण॥
छतरपुर के कुपी नगर में, गूँज उठी शहनाई थी।
श्री नाथूराम के घर में अनुपम, बजने लगी बधाई थी॥
बचपन में चंचल बालक के, शुभादर्श यूँ उमड़ पड़े॥
ब्रह्मचर्य व्रत पाने हेतु, अपने घर से निकल पड़े॥
आठ फरवरी सन् छियानवे को, गुरुवर से संयम पाया।
मोक्ष ज्ञान अन्तर में जागा, मन मयूर अति हर्षाया॥
पद आचार्य प्रतिष्ठा का शुभ, दो हजार सन् पाँच रहा।
तेरह फरवरी बंसत पंचमी, बने गुरु आचार्य अहा॥
तुम हो कुंद-कुंद के कुन्दन, सारा जग कुन्दन करते।
निकल पड़े बस इसलिए, भवि जीवों की जड़ता हरते॥
मंद मधुर मुस्कान तुम्हारे, चेहरे पर बिखरी रहती।
तव वाणी अनुपम न्यारी है, करुणा की शुभ धारा बहती है॥
तुममें कोई मोहक मंत्र भरा, या कोई जादू टोना है।
है वेश दिगम्बर मनमोहक अरु, अतिशय रूप सलौना है॥
हैं शब्द नहीं गुण गाने को, गाना भी मेरा अन्जाना।
हम पूजन स्तुति क्या जाने, बस गुरु भक्ति में रम जाना॥
गुरु तुम्हें छोड़ न जाएँ कहीं, मन में ये फिर-फिरकर आता।
हम रहें चरण की शरण यहीं, मिल जाये इस जग की साता॥
सुख साता को पाकर समता से, सारी ममता का त्याग करें।
श्री देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में, मन-वच-तन अनुराग करें॥
गुरु गुण गाएँ गुण को पाने, औ सर्वदोष का नाश करें।
हम विशद ज्ञान को प्राप्त करें, औ सिद्ध शिला पर वास करें॥

ॐ ह्रूँ 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वा.।

दोहा– गुरु की महिमा अगम है, कौन करे गुणगान।
मंद बुद्धि के बाल हम, कैसे करें बखान॥

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

e e e